

# शिक्षा का अधिकार

क्या हम सही रास्ते पर हैं?

दिशा नवानी

अनुवाद-वर्षा

**ब**हु प्रतीक्षित कानून, शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई) जो बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की गारण्टी देता है- भारत के स्वतंत्रता हासिल करने के 63 सालों बाद आया। बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण व गरिमापूर्ण जीवन जीने को सुनिश्चित करना इस अधिकार का एक अविभाज्य हिस्सा है, इसके बावजूद, (गोपाल कृष्ण गोखले ने भी इसी बात पर ज़ोर दिया था), संविधान के निर्माण के दौरान इसको राज्य द्वारा अपने नागरिकों को दिए जाने वाले मूलभूत अधिकारों की सूची में शामिल नहीं किया गया। 14 साल से नीचे के सभी बच्चों को शिक्षा देने का लक्ष्य, राज्य की नीति के अ-बाध्यकारी नीतिनिर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 45 में शामिल किया गया। इस लक्ष्य को 10 साल की समय सीमा में हासिल किया जाना था। चूंकि, नीतिनिर्देशक तत्व कानूनी रूप से राज्य के लिए बाध्यकारी नहीं होते इसलिए यह समय रेखा किसी दण्ड के अभाव में आगे बढ़ती गई। अंततः 2002 में संसद ने संविधान का 86वां संशोधन पारित किया और शिक्षा के अधिकार (आरटीई) को 6-14 साल के बच्चों के लिए एक मौलिक अधिकार बनाया। अनुच्छेद 21 को विस्तारित करते हुए अनुच्छेद 21ए-शिक्षा के अधिकार को इसमें शामिल कर लिया और इस तरह वस्तुतः आरटीई को जीने के अधिकार के समतुल्य बनाया। अगस्त 2009 में आरटीई अधिनियम पारित होने और 1 अप्रैल 2010 से इसके प्रभावी होने के साथ यह व्यवस्था समाप्त हो गई। कुछ स्पष्ट कमियों के बावजूद यह अधिनियम एक मील के पत्थर जैसा निर्णय साबित हुआ। क्योंकि, इसने एक ऐसा न्यायसंगत कानूनी ढांचा प्रस्तुत किया जो इस आयु समूह के बच्चों के लिए शिक्षा सुनिश्चित करता था और इसने गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का न्यूनतम मानक भी सामने रखा।

आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने और स्कूलों में पर्याप्त संख्या में शिक्षकों की नियुक्तियां करने के लिए तीन साल की एक समय सीमा रखी गई जिसे 31 मार्च 2013 को समाप्त होना था। शिक्षकों के प्रशिक्षण से संबंधित प्रावधानों के लिए थोड़ी और विस्तारित समय सीमा तय की गई जिसे 31 मार्च 2015 को समाप्त होना था, लेकिन इस समय सीमा को भी अब 2019 तक बढ़ा दिया गया है।

अधिनियम को पारित हुए 7 साल बीत चुके हैं और हम यह पढ़ते-सुनते रहते हैं कि इसके अनेकों प्रावधान अभी भी ठीक से लागू नहीं हुए हैं जिससे इसकी विशिष्टताओं के प्रभाव और अमल पर प्रश्नचिह्न लग गए हैं। 2011 से अब तक आरटीई के क्रियान्वयन की स्थिति का शिक्षा अधिकार मंच द्वारा किए गए व्यवस्थित वार्षिक आकलनों से एक अन्तर्दृष्टि लेते हुए यह लेख इस अधिनियम की प्रगति और कमियों दोनों का विश्लेषण इन दोनों (ढांचा और क्रियान्वयन) कोणों से करने का प्रयास करेगा।

## महत्व

यह रेखांकित किए जाने की ज़रूरत है कि यह अधिनियम सरकार द्वारा शुरू की गई केवल एक और योजना या कार्यक्रम नहीं है। इसका लक्ष्य, शिक्षा को ऐसे मौलिक अधिकार के रूप में रूपान्तरित कर देने का है जिस पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता। यह एक ऐसा हक है जिसे राज्य ने अपने बच्चों को मुहैया कराया है- यह कोई परोपकार का कार्य नहीं, बल्कि यह एक ऐसी चीज़ है जिसके लिए वे न्यायोचित रूप से योग्य हैं- और यह एक ऐसी चीज़ है जिससे उन्हें अपना जीवन गरिमापूर्ण तरीके से जीने का मौका मिलेगा।

शिक्षा को मौलिक अधिकार मुख्य रूप से वंचित और हाशियाकृत बच्चों को सहायता देने के लिए बनाया गया था, न कि उनके लिए जिनके पास पर्याप्त संसाधन हैं और वे बहुत बड़े निजी और सरकारी स्कूलों में आसानी से शिक्षा हासिल कर सकते हैं। इस अधिकार को सभी बच्चों के लिए न्यायसंगत शैक्षिक अवसरों में बदलने की आवश्यकता है और इसे अब तक दरकिनार किए गए बच्चों के लिए सस्ती, स्तरहीन शिक्षा के एक प्रावधान के रूप में नहीं देखना चाहिए।

चूंकि, इस अधिकार का संबंध बच्चों से है अतः इसको अपने व्यवहार में भी इस तरह सुस्पष्ट होना चाहिए। किसी वयस्क अथवा किसी संस्था को यह सुनिश्चित करने के लिए उत्तरदायी होना चाहिए कि इसका उल्लंघन न किया जाए। माता-पिता अपने बच्चों के स्वाभाविक अभिभावक होते हैं तो उन्हें शिक्षा तक पहुंच, समता और गुणवत्ता के लिए जवाबदेह नहीं बनाया जा सकता। सिद्धांततः, यह अधिनियम यह रेखांकित करता है कि प्राथमिक शिक्षा पूरी तरह से राज्य की ज़िम्मेदारी होती है। इसके प्रति राज्य योग्यता और अतिउत्तमता अथवा पार्टनरशिप के नाम पर सिविल सोसाइटी या निजी हाथों में देकर पल्ला नहीं झाड़ सकता।

## प्रावधानों को सक्षम बनाना

इस अध्यादेश ने कुछ बहुत आधारभूत प्रावधान प्रदान किए और इसने भारतीय शिक्षा व्यवस्था में सुधार करने के लिए कुछ बेहद प्रगतिशील उपाय पेश किए हैं। इसके अनुसार यह अनिवार्य है कि प्रत्येक बच्चे के घर के समीप ही एक स्कूल होना चाहिए। (प्राथमिक स्तर पर यह 1 किमी और उच्चतर प्राथमिक स्तर पर 3 किमी की दूरी पर होना चाहिए), इसने आयु-अनुरूप सीखने की शुरुआत की (स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों अथवा स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों के लिए इसने विशेष प्रशिक्षण का प्रावधान किया जिससे वे अपने साथी समूह के समकक्ष आ सकें) और इसने प्रत्येक स्कूल के लिए बुनियादी ढांचा एवं शिक्षक-छात्र अनुपात (पीटीआर) के लिए नियम निर्धारित किए। इसने सतत व व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) का आरम्भ किया, इसने शारीरिक दण्ड को गैरकानूनी बनाया, इसने निजी क्षेत्र को अपनी निगरानी के दायरे में लिया और गुणवत्ता पूर्ण मानक, निजी स्कूलों तक विस्तारित किए और इसने स्कूल प्रबंधन समिति (एसएमसी) का गठन करके शिक्षा की प्रक्रिया में माता-पिता समेत सभी साझेदारों की हिस्सेदारी सुनिश्चित की। अतः क्रियान्वयन के लिए एक निर्देशात्मक फ्रेमवर्क प्रस्तुत करने के अलावा इस अधिनियम ने स्कूलों में बच्चों के लिए एक भय-मुक्त पठन-पाठन माहौल सुनिश्चित करने के लिए कई प्रावधान भी किए और मौजूदा पाठ्यचर्या और मूल्यांकन व्यवहारों में सुधार किए। इस संदर्भ में, सर्वाधिक प्रगतिशील प्रावधानों में से एक था- कक्षा 8 तक किसी भी बच्चे को फेल करने पर प्रतिबन्ध लगाना। दुर्भाग्य से यह सर्वाधिक विवादित प्रावधानों में से एक था और अन्ततः उसे हटा लिया गया।

## अन्तर्निहित कमी

इस अधिनियम में कुछ गंभीर कमियां हैं। पहली है कि 0-6 और 14-18 साल के बच्चों को इससे बाहर रखा गया है। (यह कल्पना करना मुश्किल है कि कैसे केवल आरंभिक शिक्षा ही बच्चों को उनकी शैक्षिक यात्राओं अथवा जीवन यात्राओं में पर्याप्त मदद कर सकती है)। यह अधिनियम उन नियमों को स्थापित करने में भी नाकामयाब रहा है जो

सार्वभौमिक गुणवत्ता वाली जन शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था के निर्माण के लिए आवश्यक हैं, समान स्कूल व्यवस्था बनाने की तो बात ही छोड़ दीजिए जिसकी कोठारी कमीशन (1964-66) (भारत सरकार 1966) ने अपनी रिपोर्ट में वकालत की थी। विशेषज्ञों के अनुसार, यह एक बड़ी कमी है जो निजी एवं सरकारी दोनों जगहों पर एक स्तरीकृत स्कूली ढांचे को वैधानिक बनाती है। इस अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए स्पष्ट तौर पर बजट की कोई रूपरेखा या संसाधनों का बंटवारा नहीं किया गया है। इसने हाशियाकृत समूहों के बच्चों के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं किया है जैसे लावारिस बच्चे, प्रवासी परिवारों के बच्चे तथा संघर्ष क्षेत्रों में रहने वाले बच्चे जो स्कूल जा सकने में खास तरह की दिक्कतों का सामना करते हैं। इन मुद्दों को संबोधित किए जाने की जरूरत है। इसी तरह, पहली पीढ़ी के सीखने वालों को वंचित बच्चों की एक समान टिप्पणी (generic rubric) वाले समूह के तहत रख दिया गया है। यह अधिनियम एक ऐसी गलत धारणा के तहत काम करता है कि इस अधिनियम को लागू करने वाले राज्य और इसके क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी निकाय ऐसे मुद्दों को संवेदनशील तरीके से डील करेंगे, सरोकारों को चिह्नित करेंगे और इसके लिए आवश्यक वित्तीय प्रावधानों को उपलब्ध कराएंगे।

## अब तक की यात्रा

2010 में लागू होने के बाद से इस अधिनियम का क्रियान्वयन बहुत सुगम नहीं रहा है। तथापि, एक ऐसी जटिल समस्या जो सालों तक राज्य की उपेक्षा का परिणाम है, उस पर किसी और तरह से सोचना अयथार्थवादी होगा। इस संदर्भ में, यह रेखांकित करना महत्वपूर्ण है कि सभी राज्यों में इस अधिनियम का क्रियान्वयन समान नहीं रहा है। कुछ राज्य अभी भी बहुत पीछे हैं तो कुछ ने अच्छी प्रगति की है। इससे पता चलता है कि एक अनुकूल माहौल, आवश्यक संसाधन और मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति होने पर इस अधिनियम के प्रावधानों को “लागू किया” जा सकता है।

इस दिशा में कुछ महत्वपूर्ण लेकिन मिश्रित उपलब्धियां हैं। डिस्ट्रिक्ट इन्फार्मेशन सिस्टम फार एजुकेशन (डीआईएसई-डाइस) (2015-16) के आंकड़ों के अनुसार बच्चों की कुल नामांकन दर (जीईआर) प्राथमिक स्तर पर 99.21 प्रतिशत और उच्च प्राथमिक स्तर पर 92.81 प्रतिशत रही। जबकि अन्तिम नामांकन दर (एनईआर) प्राथमिक स्तर पर 91.64 प्रतिशत और उच्च प्राथमिक स्तर पर 90.09 प्रतिशत थी। हालांकि इससे एक सकारात्मक संकेत मिलता है, तो भी यह उल्लेखनीय है कि स्कूल तक पहुंच का मुद्दा बहुत गम्भीर है तथा इस पहुंच की प्रकृति और इन जगहों पर दिए जाने वाले सीखने के अनुभवों की गुणवत्ता की कहीं अधिक प्रासंगिकता और सामाजिक महत्व है। तमाम आकलन सर्वेक्षण बार-बार यह दिखाते हैं कि सभी तरह के स्कूलों में, लेकिन खास तौर से सरकारी स्कूलों में सीखने का स्तर गिर रहा है। इसके अलावा, शिक्षणशास्त्रीय प्रक्रिया बेहद असंतोषजनक है तथा नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क 2005 अथवा मूल्यांकन का सीसीई फ्रेमवर्क का बहुत कम अनुपालन किया जा रहा है। ये दोनों ही दो ऐसे सर्वाधिक प्रगतिशील कदम हैं जिसने शिक्षा व्यवस्था की पुनर्बोधधारणा और पुनर्कल्पना की जो पहले रटने पर आधारित थी।

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्कूलों की कुल संख्या में और बुनियादी ढांचे में कुछ इजाफा हुआ है जैसे- पीने के पानी की सुविधाएं, खेल के मैदान और लड़कियों के लिए शौचालय। डाइस के अनुसार, सन 2014-15 में प्राथमिक स्कूलों में 96.06 प्रतिशत स्कूलों में पीने के पानी की व्यवस्था थी, 92.03 प्रतिशत स्कूलों में लड़कों के लिए चालू हालत में शौचालय थे तथा 92.54 प्रतिशत स्कूलों में लड़कियों के लिए चालू हालत में शौचालय थे। तथापि, कोई यह निश्चित नहीं कह सकता कि किस हद तक एवं किस तरीके से सभी राज्यों के सारे स्कूलों में यह हासिल किया गया। इसके बावजूद, 40 प्रतिशत स्कूलों में खेल के मैदान नहीं हैं और 20 प्रतिशत से अधिक में पुस्तकालय नहीं है।

32 राज्यों की रिपोर्ट के अनुसार, उनके यहां इस अधिनियम के क्रियान्वयन की पड़ताल के लिए निगरानी संस्थाएं हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एमएचआरडी) द्वारा बाल अधिकार के लिए राष्ट्रीय आयोग (एनसीपीसीआर) नामक एक स्वतंत्र संस्था का गठन, इसके क्रियान्वयन की निगरानी के लिए किया गया था। इसका अर्थ यह नहीं है कि यह बहुत सहजता और निपुणता से काम करता है क्योंकि इसके पास न तो अधिकार है और न ही जरूरी संसाधन। इसने

रिपोर्ट किया कि जनवरी 2017 तक आई शिकायतों में से 59 प्रतिशत (4,881) को संबोधित ही नहीं किया गया था (आरटीई फोरम 2016-17)। कुछ राज्यों में बाल अधिकारों की सुरक्षा के लिए राज्य आयोगों (एससीपीसीआर) का गठन किया गया है, लेकिन जहां पर वे मौजूद हैं, उनके पास बहुत कम कर्मचारी हैं, और वे सरकारी हस्तक्षेप से स्वतंत्र नहीं हैं। इस बात का बेहतर पता इस बात के निरीक्षण से चलेगा कि क्या इन संस्थाओं ने किसी भी सरकारी अधिकारी या संस्था को दण्डित किया है। ऐसा कहा जाता है कि कुछ सकारात्मक कहानियां मौजूद हैं। मध्यप्रदेश एवं उड़ीसा में कुछ नवाचारी कदम उठाए गए हैं जैसे उन्होंने विभिन्न शिकायतों की सुनवाई के लिए टोल फ्री नम्बर स्थापित किए हैं। उड़ीसा ने अपने शैक्षिक पोर्टल के माध्यम से बच्चे की सहभागिता पर नज़र रखने की और उनके विषय में जानकारी देने की एक व्यवस्था विकसित की है। इसको नियमित रूप से अच्छी तरह से अपडेट किया जाता है।

## बाधाएं

इस तथ्य के बावजूद कि समय सीमा का स्पष्ट तौर पर पालन नहीं हुआ है, ऐसे कई अन्य मोर्चे हैं जहां पर इस अधिनियम के क्रियान्वयन में कुप्रबंधन है। डाइस का नवीनतम आंकड़ा यह बताता है कि भारत में केवल 9.54 प्रतिशत स्कूल ही बुनियादी ढांचे संबंधी व शिक्षकों की उपलब्धता में आरटीई की नियमावलि से पूरी तरह से लैस हैं। 21 राज्य राष्ट्रीय औसत से नीचे हैं। कुछ इलाके ऐसे हैं जहां पर कार्यवाही खासतौर पर बहुत धीमी अथवा सही रास्ते पर नहीं है।

बच्चों की सामाजिक पृष्ठभूमि और भारतीय शिक्षा व्यवस्था में उनके अनुभवों के बीच बहुत मजबूत सहसंबंध है। देसाई एवं अन्य (2010) के अनुसार शिक्षा में पूरी तरह से सामाजिक विभेद है जिसका असर नामांकन और स्कूल छोड़ने वालों की दरों पर पड़ता है। दलित, आदिवासी और मुस्लिम बच्चों का स्कूलों में सम्भावित रूप से कम नामांकन होता है और उनके स्कूल छोड़ने की दर की सम्भावना भी थोड़ी अधिक होती है। इस तरह, जबकि 94 प्रतिशत बच्चे अगड़ी जाति से और 96 प्रतिशत बच्चे अन्य धार्मिक समूहों से नामांकित हुए थे, दलित, आदिवासी एवं मुस्लिम बच्चों के आंकड़े क्रमशः 83, 77, और 76 प्रतिशत थे। शोध अध्ययन यह भी बताते हैं कि स्कूल में उनके अनुभवों में शारीरिक और प्रतीकात्मक हिंसा के उदाहरण सम्मिलित रहते हैं।

अभी भी बच्चों की एक विशाल जनसंख्या औपचारिक स्कूल व्यवस्था से बाहर ही रहती है। इस तरह के बच्चों के बारे में विभिन्न एजेन्सियों द्वारा दी गई रिपोर्टों में कुल मिलाकर बहुत विसंगतियां हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के 2014 में किए एक सर्वेक्षण के अनुसार 60 लाख बच्चे औपचारिक शिक्षा व्यवस्था से बाहर हैं, 2011 की जनगणना के अनुसार यह आंकड़ा 3 करोड़ 80 लाख है। जो नामांकित होते हैं उनमें से भी एक बड़ा हिस्सा प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं। जबकि ये आंकड़े वे हैं जो दर्ज हुए हैं, हम उन मामलों की कल्पना कर सकते हैं जिन पर ध्यान ही नहीं दिया गया और जो दर्ज ही नहीं हुए। ये बच्चे खास तौर से समाज के गरीब और हाशियाकृत तबकों से आते हैं- खास तौर से लावारिस बच्चे, बाल मजदूर, संघर्ष क्षेत्रों में रहने वाले बच्चे, और अलग तरीके से सक्षम (विकलांग?) बच्चे।

इस बात का कोई आंकड़ा उपलब्ध नहीं है कि हाशियाकृत समुदाय के कितने बच्चों को विशेष प्रशिक्षण दिया गया है- जैसा कि इस अधिनियम में सोचा गया है- और वे वास्तव में औपचारिक स्कूलों में प्रवेश पा गए हैं।

आरटीई अधिनियम अपने लक्ष्यों को हासिल करने में क्यों नाकामयाब रहा, इसके प्रमुख कारणों में से एक है कि इसके क्रियान्वयन के लिए कोई प्रतिबद्ध वित्तीय संसाधन नहीं दिए गए। जब अधिनियम पारित हुआ था तब भी इसके साथ, इसके क्रियान्वयन के लिए ज़रूरी वित्तीय संसाधन सुनिश्चित करने के लिए कोई वित्तीय ज्ञापन नहीं था। बल्कि, इस अधिनियम को लागू करने वाली प्राथमिक संस्था सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) को आवंटित बजट में भी धीरे-धीरे कटौती की गई (2012-13 में 23,873 करोड़ रुपए से 2015-16 में 22,500 करोड़ रुपए)। कोठारी आयोग द्वारा प्रस्तावित शिक्षा पर भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 6 प्रतिशत आवंटन एक बहुत दूर का सपना

बन कर रह गया है और वास्तविक आवंटन 3.5 प्रतिशत पर स्थिर हो गया है। एक तरफ जहां फंड बहुत ही सीमित है वहीं दूसरी तरफ इसका पूरा इस्तेमाल ही नहीं होता है। हाल ही में कांट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल (सीएजी) द्वारा एक उपलब्धि लेखा-जोखा संसद में प्रस्तुत किया गया। इसमें कहा गया कि “सरकारी/राज्यों की क्रियान्वयन समितियां लगातार फंड का उपयोग करने में असफल रही हैं।” 2010-11 और 2015-16 के बीच यह अल्प उपभोग 21 प्रतिशत से 41 प्रतिशत रहा। राज्य सरकारें अधिनियम पारित होने के पहले 6 सालों में आवंटित राशि 87,000 करोड़ रुपए इस्तेमाल करने में असफल रहीं। यह आरटीई से पैदा होने वाले असर को ही प्रभावित कर रहा है। (नन्दा 2017)।

आरटीई फोरम का मत है कि अकाउण्ट देखने वाले कर्मचारियों की कमी और कम्प्यूटरीकृत व्यवस्था न होने के कारण फंड आने में देर हो जाती है जिससे एसएसए द्वारा फंड का इस्तेमाल कम हो पाता है। आवंटित बजट में से बड़ा हिस्सा नवोदय विद्यालय, सर्वोदय विद्यालय और केन्द्रीय विद्यालय जैसे स्कूलों को दे दिया जाता है। जबकि, पहले दो को तो मेधावी छात्रों के लिए “आदर्श” स्कूल की तरह स्थापित किया गया था, और केन्द्रीय विद्यालय केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखता है। इन स्कूलों में, अन्य स्कूलों की तुलना में प्रति बच्चा व्यय कहीं अधिक होता है। इससे एक स्त्रीकृत जन शिक्षा व्यवस्था को वैधता मिलती है जो छात्रों से उनकी अलग-अलग सामाजिक हैसियतों की रोशनी में व्यवहार करती है।

शिक्षक समुदाय का पेशेवर मनोबल आज न केवल निम्नतम बिन्दु पर है, बल्कि धीरे-धीरे कम होते शैक्षिक संवर्ग की उल्लेखनीय कमी होती जा रही है। बड़ी संख्या में स्कूलों में अभी भी केवल एक शिक्षक है। जिससे छात्र-शिक्षक अनुपात पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शिक्षकों की भर्तियों और नियुक्तियों में देर की जाती है। अक्सर उन्हें ठेके के आधार पर रखा जाता है और 50 लाख से अधिक शिक्षक आरटीई नियमों के हिसाब से कम काबिल हैं। ये कम काबिल शिक्षक मुख्यतः निम्न प्रदर्शन करने वाले राज्यों में केन्द्रित हैं जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, असम, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश। उनकी कार्यदशा बेहद खराब है और अक्सर उन्हें वेतन मिलने में भी देर होती है। इसके अतिरिक्त, स्कूल के घंटों के अलावा प्रशासनिक कार्य उनके सिर पर मढ़ दिए जाते हैं। इससे कक्षा में बच्चों से जुड़े अकादमिक कार्यभारों पर खर्च करने होने वाला उनका वास्तविक समय कम हो जाता है।

आरटीई अधिनियम के लागू होने के सात साल बाद ऐसी रिपोर्ट है कि सरकारी स्कूलों में 9.4 लाख प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी है (प्राथमिक स्कूलों में 5.85 लाख और उच्च प्राथमिक स्कूलों में 3.5 लाख)। लगभग 8.3 प्रतिशत (96000) प्राथमिक स्कूलों में केवल एक ही शिक्षक है। हालांकि एसएसए ने 2012-13 तक 19.8 लाख शिक्षकों का पद मान्य किया था, 2014 तक केवल 15 लाख से कुछ अधिक ही शिक्षकों की भर्ती हुयी है। शिक्षकों की भर्ती प्रक्रिया में बहुत समय लगता है और न्यायालय में लगातार होने वाले मुकदमों से भी भर्ती की प्रक्रिया थम जाती है। डाइस के अनुसार (2015-16) केवल 80.31 प्रतिशत शिक्षक ही पेशेवर तरीके से प्रशिक्षित हैं। यह कहने में कोई गुरेज नहीं कि आरटीई में जिस भावना के तहत इसकी परिकल्पना की गई थी, उसके पालन में यह सबसे बुनियादी बाधा है।

## निजी छूट

निजी स्कूल लॉबी हमेशा अपने हितों की सुरक्षा में ज्यादा रुचि लेती है और इसने मांग की है कि उन्हें आरटीई नियमों में छूट दी जाए। हालांकि केवल कुछ ही राज्यों में निजी स्कूलों से संबंधित नियमों को सख्त किया गया है, निजी स्कूलों में आरटीई नियमों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए कोई राष्ट्रीय व्यवस्था नहीं है। निजी स्कूल लॉबी आर्थिक रूप से कमजोर तबके के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण का तीखा विरोध कर रहे हैं। वे आरटीई अधिनियम के तहत न्यूनतम ढांचागत ज़रूरतों में भी छूट की मांग इस आधार पर कर रहे हैं कि इन नियमों को पूरा न कर सकने के बावजूद वे गरीब बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

भाषाई और धार्मिक अल्पसंख्यक संस्थान (वित्तीय सहायता प्राप्त और गैर वित्तीय सहायता प्राप्त दोनों) अपने सांविधानिक अधिकारों में शरण ले रहे हैं। वे स्वयं को एक वैधानिक घोषणा के माध्यम से अधिनियम के दायरे से

बाहर रखने में कामयाब हो रहे हैं। कथित रूप से, बड़ी संख्या में अधिनियम से संबंधित मुकदमे कानून को लागू करने की बजाय उन्हें लागू न होने देने के लिए हैं।

यह अधिनियम माता-पिता और समुदाय को उनके बच्चों की शिक्षा में एक महत्वपूर्ण साझेदार बनाता है और उन्हें कुछ अधिकार भी देता है। इसका पहला कदम है- एसएमसी का गठन। हालांकि, एसएमसी के गठन में कई समस्याएं हैं- जागरूकता की कमी और भूमिकाओं के बारे में स्पष्टता की कमी, फंड की कमी, स्कूल के विकास की योजनाओं (एसडीपी) को तैयार करने में क्षमता और प्रशिक्षण का अभाव, और सबसे प्रमुख है स्वायत्तता और स्कूल प्राधिकारियों से सवाल करने की योग्यता में कमी।

2015-16 में, सभी राज्यों ने रिपोर्ट दी कि 95 प्रतिशत स्कूलों में एसएमसी मौजूद हैं। कथित तौर पर, इनमें से अधिकांश केवल कागज पर ही मौजूद थे। जहां वे अस्तित्व में थे, उन्होंने एसडीपी को तैयार नहीं किया और अपने स्कूलों के लिए अनुदानों को नहीं प्राप्त किया। चूंकि समूचे भारत में माता-पिता का एकरूप समुदाय नहीं है, अतः स्कूलों की कार्यवाहियों पर असर डालने की योग्यता और उनकी स्थिति समाज में उनकी हैसियत के हिसाब से प्रभावित होती है। सारे माता-पिता को एक ही चश्मे से देखना और एसएमसी के गठन को सशक्तिकरण का प्रतीक मान लेना बहुत ही भोलापन होगा।

इस विश्वास के अनुरूप कि फेल होने वाले बच्चों को उसी कक्षा में रोक कर रखने से सीखने में इजाफा होता है, केन्द्रीय सरकार और राज्यों ने आरटीई के सर्वाधिक प्रगतिशील प्रावधान, किसी को फेल न करने की नीति (एनडीपी) को खत्म कर दिया है। इस प्रावधान के तहत, कक्षा आठ तक बच्चे को स्कूल में रहने का अधिकार मिला था। (अब इस प्रावधान को बदला जा रहा है जिसमें 5वीं तक के बच्चे ही इसमें शामिल होंगे)। इस प्रावधान की गलत तरीके से यह व्याख्या की गई कि इसने मूल्यांकन को समाप्त कर दिया है और इस बात की अनुमति दे दी है कि बच्चे खुद-ब-खुद एक क्लास से अगले क्लास में चले जाएंगे। जिससे बहुत ही कम सीखना हो सकेगा। बच्चे को फेल करना और मौजूदा क्लास में ही रोक कर रखने का पूरा विचार अधिनियम की इस परिकल्पना के ही खिलाफ है जो बच्चों के लिए आठ वर्षों तक तनावरहित सीखने का माहौल सुनिश्चित करता है। शोध यह बताते हैं कि पास-फेल वाली रोक कर रखने की नीति का बच्चों के स्कूल में बने रहने की प्रेरणा पर बहुत घातक प्रभाव पड़ता है और इसके कारण उन्हें जबरन इस व्यवस्था से बाहर कर दिया जा रहा है। जले पर और नमक छिड़कते हुए बदले की भावना से बोर्ड परीक्षाएं वापस लौट आई हैं और अब कक्षा 5 से ही इनका प्रावधान कर दिया गया है।

पिछले कुछ सालों में सरकारी स्कूलों में घटती नामांकन की संख्या के साथ ही कुछ राज्यों में बड़ी संख्या में स्कूल बन्द हो गए हैं। राजस्थान सरकार द्वारा लगभग 18000 स्कूल या तो प्रारम्भिक रूप से बन्द कर दिए गए हैं या उनका विलय कर दिया गया है, महाराष्ट्र में 2014 में यह आंकड़ा 13000 था। कुछ शहरी इलाकों में, कुछ सरकारी स्कूलों को अच्छी संख्या में बच्चों के होने के बावजूद बन्द कर दिया गया- समय के साथ उन ज़मीनों के दाम बढ़ गये जिस पर स्कूल बने थे, और भूमाफिया इस पर कब्जा करना चाहता था। (आरटीई फोरम 2016-17)

तेलंगाना में हाल ही में किया गया एक अध्ययन बताता है कि उन स्कूलों को बन्द कर दिया गया जिन्होंने शून्य नामांकन बताया अथवा जहां 20 से कम बच्चे थे। इससे जनवरी 2016 तक कुल 458 सरकारी स्कूल बन्द कर दिए गए। उड़ीसा सरकार ने वे 165 स्कूल बन्द कर दिए जहां 5 या उससे कम बच्चे थे। दूसरे चरण में यह योजना बन रही है कि 10 या उससे कम बच्चों वाले स्कूलों को बन्द कर दिया जाए। स्पष्टतौर पर नामांकन के नियम का सख्ती से पालन नहीं किया जा रहा था। उड़ीसा और राजस्थान जैसी कुछ जगहों पर कई स्कूल मनमाने तरीके से बन्द किए जा रहे हैं जिसका असर बड़ी संख्या में लड़कियों और गरीब बच्चों पर पड़ रहा है। (राव व अन्य 2017)। जब ऐसी नीति का अंधाधुंध अनुसरण किया जाता है तो अनेकों बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं और कम लागत वाले निजी स्कूलों को स्थापित किया जाता है जो मुख्य रूप से कम वेतन पर और कम प्रशिक्षित शिक्षक ठेके पर नियुक्त करते हैं, जिससे गरीब बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता और भी छिन्न-भिन्न हो जाती है।

1990 के दशक में निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण के लिए स्वयं को खोल देने वाले भारतीय राज्य ने इस अधिनियम के केन्द्रीय मत के विपरीत सामाजिक क्षेत्र में अपनी जिम्मेदारियों को कम करना जारी रखा है और वह निजी लॉबी को आमंत्रित कर रहा है कि वे या तो उसके साथ साझेदार बन जाएं या उसकी जिम्मेदारियों को लेते जाएं। कुछ राज्य निजी-सरकारी साझेदारी में शामिल हो चुके हैं, जहां सरकारी स्कूलों का प्रबंधन निजी हाथों में सौंप दिया गया। उसके बाद और अधिक शिक्षक निजी क्षेत्र की ओर चले गए हैं, और सरकारी स्कूलों में शिक्षकों की नियुक्तियों में कमी आई है। वर्तमान समय में यह दिखाया जाता है कि कम लागत वाले निजी स्कूल उन गरीब बच्चों को गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा देते हैं, जिनका स्पष्ट तौर पर सरकारी स्कूलों से मोह भंग हो गया है, और वे उनमें शिक्षा जारी नहीं रखना चाहते। इस क्षेत्र में शोध करने वाले लोग इस दावे की वैधता का तीखा विरोध कर रहे हैं। हाल ही में आंध्रप्रदेश में अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा किया गया एक दीर्घकालीन अनुभववादी अध्ययन (longitudinal study) यह बताता है कि आम धारणा के विपरीत, फीस लेने वाले निजी स्कूल, सरकारी स्कूल की तुलना में वंचित समुदायों से आने वाले बच्चों के लिए बेहतर सीखना सुनिश्चित करने में असमर्थ रहे हैं।

यह विश्वास करना अयथार्थवादी होगा कि निजी क्षेत्र या तो जिम्मेदारी उठा लेंगे या वे सार्वभौमिक शिक्षा के लिए वैधानिक रूप से जिम्मेदार ठहराए जा सकेंगे। जहां भी शिक्षा को सार्वभौम किया गया है, इसे सरकारी फंड से किया गया है और सरकारी स्कूलों में किया गया है (ग्रीन 1990) न कि मुनाफ़ा कमाने वाले निजी अथवा परोपकारी प्रयासों द्वारा।

## आगे क्या?

मैं इस लेख का अन्त सिफारिशों के साथ नहीं करूंगी, जैसा कि अकादमीशियन और नागरिक सामाजिक संगठन कुछ दशकों से चीख-चीख कर चिल्ला रहे हैं कि प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौम करने के लिए क्या किए जाने की जरूरत है। इस अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए मौजूद चुनौतियों को पहचानने और उन्हें दूर करने के लिए किसी राकेट विज्ञान की आवश्यकता नहीं है। केवल जरूरत है एक राजनीतिक इच्छाशक्ति, प्रभावी क्रियान्वयन और निरीक्षण व्यवस्था व स्पष्ट रूप से तय वित्तीय संसाधनों की। भारतीय राज्य को बच्चों की शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी है, और इसे बच्चों का ऐसा हक समझना है जिस पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही, सबसे ज्यादा जरूरत है एक विशाल जन आन्दोलन खड़ा करने की कि सरकारी शिक्षा व्यवस्था को मजबूत किया जाए (बदलने की बजाय), इसमें राज्य से अपील की जाए कि वह एक दी गई सांविधानिक समय सीमा में इस अधिनियम के क्रियान्वयन का पूरा उत्तरदायित्व ले। ◆

(ईपीडब्लू के 5 अगस्त, 2017 अंक से साभार)

**लेखिका परिचय :** टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुम्बई के स्कूल ऑफ एज्युकेशन में अध्यक्ष हैं। आरंभिक शिक्षा में एम.ए. कोर्स की समन्वयक हैं। शिक्षा के समाजशास्त्र, पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र और आकलन संबंधी मुद्दों में गहरी रुचि है। शिक्षा संबंधी विभिन्न मुद्दों पर तमाम पत्र-पत्रिकाओं में सतत लेखन।

**संपर्क :** dishanawani@yahoo.com

## संदर्भ :

Government of India (1966): Report of the Education Commission (1964-66): Education and National Development, Ministry of Education, New Delhi.

Green, Andy (1990): Education and Formation: The Rise of National Education Systems in England, France and USA, Hampshire: Palgrave-The Macmillan Press.

DISE (2001): "Analytical Reports," DISE database, <http://udise.in/AR.htm>.

Desai, Sonalde, Amaresh Dubey, Brijlal Joshi, Mitali Sen, Abusaleh Shariff and Reeve D Vanneman (2010): Human Development Report: Challenges for Society in Transition, New Delhi: Oxford University Press.

Karopady, D D (2016): "Do Private Schools Really Ensure Better Learning Outcomes for Children?," Azim Premji Foundation, [http://test.azimpremjifoundation.org/sites/default/files/do 20 private schools 20really 20ensure 20better 20learning 20outcomes 20for 20children2016issue20xxv.pdf](http://test.azimpremjifoundation.org/sites/default/files/do%20private%20schools%20really%20ensure%20better%20learning%20outcomes%20for%20children2016issue20xxv.pdf)

Nanda, Prashant K (2017): "Rs 87,000 Crore of Right to Education Funds Unused by States, Says CAG," 22 July, LiveMint, <http://www.livemint.com/Politics/zawzUaawjG9bTJrldX99IK/Rs87000-crore-of-right-to-education-funds-unused-by-states.html>.

Rao, S, S Ganguly, J Singh and R R Dash (2017): School Closures and Mergers: A Multi-State Study of Policy and Its Impact on Public Education System Telengana, Odisha and Rajasthan, New Delhi: Save the Children.

The Gazette of India (2009): "The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009," 27 August, New Delhi: Ministry of Law and Justice <http://eoc.du.ac.in/RTE%20-%20notified.pdf>.

RtE Forum (2016-17): "Draft Report on Implementation of the Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009," 2016-17, RtE Forum: New Delhi.



पत्रिका का पृष्ठ	पूरे पृष्ठ के लिए	आधे पृष्ठ के लिए	रंग संयोजन
बैक कवर	30,000 रुपये	20,000 रुपये	रंगीन (फोर कलर)
कवर पृष्ठ 2	25,000 रुपये	उपलब्ध नहीं	रंगीन (फोर कलर)
कवर पृष्ठ 3	20,000 रुपये	12,500 रुपये	रंगीन (फोर कलर)
अंदर के पृष्ठ	10,000 रुपये	6,000 रुपये	ब्लैक एण्ड व्हाइट